सनातन धर्म में कर्म सिद्धांत : वर्तमान समय में नैतिक जिम्मेद्दारी

डॉ. हंसा शुक्ला, प्राचार्य

स्वामी श्री स्वरुपानंद सरस्वती महाविद्यालय

हुडको, भिलाई (छ.ग.),

hansashukla.shukla@gmail.com

कर्म का सिद्धान्त मुख्यतः भारतीय दर्शन से सम्बंधित है। सनातन धर्म में कर्म का महत्तव्पूर्ण स्थान है। यहाँ कर्म का अर्थ शारीरिक क्रिया तक सीमित नहीं है बल्कि विचार, वाणी, और व्यवहार की प्रत्येक गतिविधि कर्म में शामिल है। कर्म कारण और प्रभाव का नियम है। सनातन परंपरा में कर्म का पालन करना सामाजिक न्याय और कल्याण का आधार माना गया है। कर्म से ही मनुष्य का भाग्य और पुर्नजन्म निर्धारित होता है। बिना फल की चिंता किये कर्म सिद्धान्त को सनातन धर्म का नैतिक नींव माना जाता है। सनातन धर्म में निष्काम कर्म (फल की आकांक्षा के बिना कर्तव्य) को सर्वोपरि माना गया है, जो मोक्ष की ओर ले जाता है।

कर्म शब्द का मूल धातु है कृ, जिसका अर्थ है-करना, कर्म वह क्रिया या काम है, जो हमारे पूरे जीवन को प्रभावित करता है तथा कारण और परिणाम (कॉज़ एंड इफेक्ट) को निर्धारित करता है यह हमारे विचार और भावनाओं को भी संप्रेषित करता है और हम जो कुछ भी चेतन अवस्था में करते हैं, वह सब हमारा कर्म ही होता हैं. कर्म ही आत्मा (द सोल) के सांसारिक जीवनचक्र को निर्धारित करती है। मानव जीवन की प्रत्येक क्रिया और प्रतिक्रिया चाहे वह शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक हो वही कर्म है।

सनातन धर्म एक जीवनपद्धति है यह कोई रूढ़ि नहीं है इस धर्म में कर्म की बड़ी महत्ता है. कर्म को ही सबसे महान और श्रेष्ठ माना गया है. भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने तीसरा अध्याय कर्मयोग को ही समर्पित कर दिया उन्होंने उद्घोषणा की **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'**[1] इसका तात्पर्य है कर्म करना ही हमारे हाथ में है, उसका परिणाम क्या होगा इसकी चिंता करना हमारा काम नहीं है इसलिये हमें निष्काम भाव से कर्म करना चाहिए। इसका सीधा-सा मतलब है कर्म ही धर्म है इससे स्पष्ट होता है की सनातन में किसी भी पूजा पद्धति या धर्मकांड से अधिक कर्म पर ज़ोर दिया गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में भी कहा है **'कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जस करहिं सो तस फल चाखा'।**[2] इस चौपाई के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास भाग्यवादी बनने के बजाय कर्म पर भरोसा करने की बात कही है। इसी तथ्य के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि **भाग्य तो कायरों का हथियार है, बलशाली तो अपना भाग्य खुद निर्मित करते हैं** इसी बात को अल्लामा इक़बाल ने कुछ इस तरह कहा है- **ख़ुदी को कर बुलंद इतना कि हर तक़दीर से पहले ख़ुदा बंदे से खुद पूछे, बता तेरी रज़ा क्या है?** इंसान अपना भाग्य अपने कर्म से स्वयं बनाता है इसलिए सनातन धर्म में यह भी माना गया है कि कुछ कर्मों का फल तुरंत नहीं मिलता, लेकिन कभी न कभी जीवन के किसी मोड़ पर उसका फल हरेक व्यक्ति को भोगना ही पड़ता है और इस जीवन में किये गए कर्मो का फल अगले जीवन में भी प्राप्त होता है इसी आधार पर पुनर्जन्म को माना जाता है।

सनातन धर्म की आध्यात्मिक धारा किसी भी इंसान के जीवन के सभी पक्षों को तय करती है. इसी तरह से योग का चिंतन भी सनातन धर्म का अभिन्न हिस्सा है. योग का अर्थ है जोड़ना. योग और कर्म जब मिल जाते हैं, तो उसी को कहते हैं कर्मयोग. कर्म को आध्यात्मिक स्तर पर जोड़ना ही कर्मयोग कहलाता है. योग का सीधा सा मतलब आत्म का ब्रम्ह (परम तत्व) से एक हो जाना है. ब्राह्मण किसी जाति विशेष का परिचायक न होकर उस परम सत्ता, परम तत्व और पवित्र आत्मा का द्योतक है, जो लगातार प्रगतिशील है, लगातार बढ़ता है और जिसका कभी क्षरण नहीं होता. उस परम तत्व के अनुरूप जब हम अपने कर्मों को निर्धारित कर देते हैं, तो उसी को कर्मयोग कहते हैं। राजा हरिश्चंद्र की कथा कर्मयोग का (मार्कंडेय पुराण, महाभारत और अन्य ग्रंथों में उल्लेखित) एक कालजयी और प्रेरक उदाहरण है। सत्य और धर्म के पालन के लिए राजा हरिश्चंद्र ने अनेक कष्ट सहे, परिवार का वियोग सहा, किन्तु अंतिम क्षण तक सत्य का परित्याग नहीं किया। उनकी अविचल निष्ठा और तपस्या के फलस्वरूप उन्हें अंततः दिव्य आशीर्वाद प्राप्त हुए और खोया हुआ राज्य भी उन्हें पुनः प्राप्त हो गया।

सनातन धर्म में कर्म का सिद्धांत एक मौलिक नियम के रूप में स्थापित है, जो सभी क्रियाओं के कारण और प्रभाव के स्वाभाविक क्रम को समझाता है। यह सिखाता है कि प्रत्येक कर्म, विचार और इरादे में एक ऊर्जा अंतर्निहित होती है, जो भविष्य के परिणामों का निर्धारण करती है। यह शाश्वत नियम निष्पक्ष और आत्म-नियंत्रित है, कर्म को किसी बाहरी सत्ता द्वारा लगाया गया पुरस्कार या दंड नहीं माना जाता, बल्कि यह व्यक्ति के अपने आचरण का प्राकृतिक परिणाम है। यह समझ हर व्यक्ति में गहरी जिम्मेदारी की भावना जगाती है और उन्हें सजग तथा नैतिक जीवन जीने के लिए प्रेरित करती है। सकारात्मक कर्म अच्छे परिणाम लाते हैं जबकि नकारात्मक क्रियाएँ अंततः अवसाद और दुःख पैदा करती हैं व्यक्ति के जीवन का आधार इन दोनों का सम्यक संतुलन ही होता है। करुणा, सत्यनिष्ठा और निःस्वार्थता जैसी गुणों को विकसित करके व्यक्ति सकारात्मक कर्म उत्पन्न कर सकता है, जिससे आध्यात्मिक विकास और अंततः मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होता है। जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र, जिसे संसार कहा जाता है, कर्म के द्वारा संचालित होता है, और इस चक्र से मुक्ति आत्म-साक्षात्कार से ही संभव है। इस प्रकार, कर्म का सिद्धांत नैतिक मार्गदर्शक दोनों के रूप में कार्य करता है, जो व्यक्ति को जागरूकता और उद्देश्य के साथ क्रिया करने के लिए प्रेरित करता है।

महापुरुष और ज्ञानी जन हमेशा से कहते रहे हैं कि अच्छे कर्मों को करने और बुरे कर्मों का परित्याग करने में ही हमारी भलाई है। किसी संत से एक व्यक्ति ने पूछा कि आपके जीवन में इतनी शांति, प्रसन्नता और उल्लास कैसे है? इस पर संत ने मुस्कराते हुए कहा था कि अपने कर्मों के प्रति यदि आप आज से ही सजग और सतर्क हो जाते हैं, तो यह सब आप भी पा सकते हैं। सारा खेल कर्मों का है। हम कर्म अच्छा करते नहीं और फल बहुत अच्छा चाहते हैं। यह कैसे संभव होगा? ऋग्वेद में वर्णित है प्रकृति निर्विकार है और मनुष्य विकारी। प्रकृति में कोई विकार नहीं है जबकि मनुष्य ने अपनी मूल प्रकृति में दोष, दुर्गुणों और कुकर्मों की मिलावट कर ली है। जिसने स्वयं को जितना कुकर्मी बनाया है, वह उतना ही दुःखी हुआ और जिसने सत्कर्मों का मार्ग पकड़ा वह उतना ही प्रगतिशील होता गया। मनुष्य की उन्नति और अवनति के मूल में उसके कर्म की ही प्रधानता है। कर्म करते समय बहुत सावधानी की आवश्यकता है : यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि कोई हमे देख नही रहा है भगवान के खाते में हमारे प्रत्येक क्षण में किये गए कर्मो का हिसाब किया जा रहा है इसलिए वही कर्म जब फल बनकर आता है तो व्यक्ति को बहुत रुलाता है अतः सतर्क रहने की बहुत आवश्यकता है!

कर्म दर्शन कर्म और आत्मा के बीच तथा आत्मा और पुनर्जन्म के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित करता है। यह माना जाता है कि आत्मा अमर है। मृत्यु के साथ शरीर नष्ट हो जाता है, जबकि आत्मा जीवित रहती है। शरीर में आत्मा व्यक्ति के सभी अच्छे और बुरे कर्मों के फल संचित करती है। कर्म को पूजा मानते हुए व्यक्ति जब राग-द्वेष को मिटा देता है तब उसके स्वभाव की शुद्धि होती है उसका हर कर्म समाज हित के लिए होता है। उसके लिए समूची वसुधा एक परिवार बन जाती है इसी आधार पर सनातन धर्म में **वसुधैव कुटुम्बकम** कहा गया है। साधारण तौर पर हम कह सकते हैं कि कर्म किए बगैर व्यक्ति किसी भी क्षण नहीं रह सकता है इसलिए कर्म हमारे अधीन हैं, उसका फल नहीं।

कर्म सतोगुणी, तमोगुणी एवं रजोगुणी हो सकता है। **सतोगुणी कर्म:-** पवित्र उद्देश्य हेतु किए गए कर्म ही सतोगुणी कर्म कहलाते हैं। अर्थात् जो कर्म ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए किए जाएं वही सतोगुणी कर्म कहलाते हैं। ये सर्वोत्तम श्रेणी के कर्म माने जाते हैं। **रजोगुणी कर्म:-** जो कर्म अपनी इंद्रियों की वासनाओं को पूरा करने के लिए किए जाते हैं उन्हें ही रजोगुणी कर्म कहा जाता है। इस प्रकार के कर्म मध्यम श्रेणी के कर्म की में गिने जाते हैं। **तमोगुणी कर्म:-** जो कर्म शास्त्रों द्वारा पूरी तरह निषिद्ध एवं अधम बताए गए हैं उन्हीं को हम लोग तमोगुणी कर्म कहते हैं।यह निम्न श्रेणी का कर्म माना जाता है। इसी प्रकार कर्म का एक और वर्गीकरण हमें देखने मिलता है - **प्रारब्ध कर्म:-** इसे सामान्य भाषा में ऐसा समझा जाता है कि यही भाग्य में लिखा हुआ था जैसे मान लीजिए कोई चालक अपनी गाड़ी चला रहा है और अचानक सड़क पर भूस्खलन हो गया और उसकी मौत हो गई यह मौत उसके प्रारब्ध वश हुई। **संचयी कर्म:-** पिछले कई कई जन्मों के संचित कर्म को संचयी कर्म कहते हैं। इसका फल हमें कई जन्मों तक भुगतना पड़ सकता है। **क्रियमाण कर्म:-** हमारे द्वारा वर्तमान में जो कार्य किए जा रहे हैं उसे ही हम क्रियमाण कर्म कहते हैं। इसी तरह कर्म को सकाम कर्म एवं निष्काम कर्म की श्रेणी में भी विद्वत जन बांटते हैं। श्रीमद्भागवत गीता के चौथे अध्याय में श्री भगवान् ने अर्जुन को कर्म, अकर्म और विकर्म का भी ज्ञान दिया है। **कर्म:-** कामनाओं सहित किया गया कार्य कर्म है। **अकर्म:-** ईश्वर के लिए किया गया कर्म अकर्म है। **विकर्म:-** निषिद्ध कर्म ही विकर्म है। गीता में कर्म को एक और तरीके से विभक्त

किया गया है। सकाम और निष्काम कर्म शामिल है। **सकाम कर्म:-** कामनाओं सहित किए गए कर्म को ही सकाम कर्म कहते हैं। एक सच्चा भक्त कभी भी कामना सहित भक्ति नहीं करता है वह भक्ति से मुक्ति तक के मार्ग को ठुकरा देता है महाराजा ध्रुव कामना सहित भगवत प्राप्ति के अच्छे उदाहरण हैं किंतु बाद में उन्हें बहुत पछतावा हुआ कि मैंने ऐसा क्यों किया अर्थात् हमें इंद्रिय सुख एवं संसार की कामना से कर्म कभी नहीं करना चाहिए। **निष्काम कर्म:-** कामनाओं से रहित कर्म को निष्काम कर्म कहते हैं। बिना किसी कामना के किया गया कर्म निष्काम कर्म होता है भक्त प्रहलाद से जब भगवान् ने वर मांगने को कहा तब उन्होंने कुछ भी मांगने से इनकार कर दिया। भगवान् द्वारा बहुत समझाने पर प्रह्लाद ने यही वर मांगा कि मुझे कभी किसी से कुछ भी मांगने की जरूरत ना पड़े ऐसा ही वर कृपा कर मुझे प्रदान करें।

भगवद्गीता के कर्म के उपदेश को कर्म योग के नाम से भी जाना जाता है जिसमें भगवान् ने अर्जुन को अपना कर्म करने की सलाह दी है लेकिन मन और बुद्धि भगवान् में लगाए रखने की बात भी कही है। यही है कर्मयोग का क्रियात्मक स्वरूप यानी मन और बुद्धि भगवान् के साथ और कर्मेंद्रियां निर्धारित कर्म के साथ। गीता में भगवान् श्रीकृष्णा एक अन्य प्रकार के कर्म की बात अर्जुन को समझा रहे हैं - **'युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्। अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते।'**[3] कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत्प्राप्ति रूपी शान्ति को प्राप्त होता है और सकाम पुरुष कामना की प्रेरणा से फल में आसक्त होकर बंधता है ॥

कर्मफल तत्काल मिले ऐसी व्यवस्था इस संसार में नहीं है। क्रिया और प्रतिक्रिया के बीच कुछ समय का अन्तराल रहता है। बीज बोते ही फल- फूलों से लदा वृक्ष सामने प्रस्तुत नहीं होता। गर्भाधान के अगले क्षण ही प्रसव नहीं होता और प्रसव के उपरान्त तत्काल नवजात शिशु किशोर या प्रौढ़ नहीं बन जाता। अभिभावकों को उसके लिए धैर्य रखना होता है। आरम्भ और परिणाम के बीच कुछ अन्तर अवश्य रहता है। यदि इस संसार में ऐसी व्यवस्था होती कि तत्काल कर्मफल मिला करता तो फिर मानवी विवेक एवं चेतना अवरुद्ध हो जाती। यदि झूठ बोलते ही जीभ में छाले पड़ जायें, चोरी करते ही हाथ में दर्द उठ खड़ा हो, व्यभिचार करते ही बुखार आ जाय, छल करने वाले को लकवा मार जाय तो फिर किसी के लिए भी दुष्कर्म करना सम्भव न होता। ऐसी दशा में स्वतन्त्र चेतना का उपयोग करने की, भले और बुरे में से एक को चुनने की विचारशीलता नष्ट हो जाती और विवेचना, ऊहापोह का बुद्धि प्रयोग सम्भव न रहता। तब दूरदर्शिता और विवेकशीलता की क्या आवश्यकता रहती और इसके अभाव में मनुष्य की सर्वतोमुखी प्रतिभा का कोई उपयोग ही न हो पाता। बुरे कार्य के दुष्परिणाम और अच्छे कार्य के सत्परिणाम समझने के लिए अन्तःप्रेरणा, अध्यात्म तत्त्वदर्शन, धर्म विज्ञान, नीति सदाचरण, श्रेय साधना का जो उपयोगी एवं आकर्षक सतोगुणी धर्म कलेवर खड़ा किया गया है उसकी कुछ आवश्यकता ही न रहती, सब कुछ नीरस हो जाता भगवान महावीर ने कहा है – 'जो जैसा अच्छा, बुरा कर्म करता है उसका फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। आत्मा स्वयं ही सर्व शक्तिमान है। कोई दूसरा न तो उसे दण्ड दे सकता है और न ही पुरस्कार। आत्मा स्वयं ही कर्ता है व स्वयं ही भोक्ता है। आत्मा अपने स्वयं के कर्मों से ही बंधन में पड़ता है। कृत-कर्मों को भोगे बिना मुक्ति नहीं है।' मनुष्य जब जन्म लेता है तब उसके पास सिर्फ प्रारब्ध होता है इसलिए पूर्व जन्म के कर्म श्रेष्ठ है तो दुर्जनो के घर पैदा होकर भी बालक विद्वान एवं सज्जन बन जाता है। इस विषय मे महान भौतिक विज्ञानी अल्बर्ट आईस्टीन ने भी कहा था कि "ईश्वर पासे नही फेंकता" क्या होना है और क्या नही होना ये ईश्वर निर्धारित नही करता बल्कि आपके कर्म निर्धारित करते है। क्या कर्म फल का सिद्धांत सिर्फ इंसानों पर ही लागू होता है? कर्म फल का सिद्धांत सभी प्राणियों पर समान रूप से लागू होता है। कोई भी प्राणी, जब तक उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, अपने कर्मों के अनुसार चार गतियों में से किसी भी गति में जन्म ले सकता है - देव-गति, मनुष्य-गति, तिर्यंच-गति (पशु-पक्षी इत्यादि) तथा नरक-गति।

सभी प्राणियों में आत्मा है, चेतन-शक्ति है तथा न्यूनाधिक मात्रा में ज्ञान है। प्रत्येक प्राणी कर्म करने में स्वतंत्र है तथा अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख का भोग करता है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणियों में भी कर्म फल स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए: एक श्वान वातानुकूलित गाड़ियों में घूमता है तो दूसरा गलियों में भटकता फिरता है। एक गाय को गौशाला में सब सुख-सुविधा प्राप्त हैं तो दूसरी निर्मम हत्या का शिकार बन जाती है। कुछ पशु-पक्षियों को अपने प्राकृतिक स्वतंत्र वातावरण को छोड़कर चिड़ियाघर की चार-दिवारी में ज़िंदगी बितानी पड़ती है। कई बार हमें एक ही जाति के पशु-पक्षियों में अलग-अलग व्यवहार जैसे किसी में करुणा भाव तो किसी में क्रोध भाव देखने मिलता है। यह उनके अलग-अलग कर्म-बंध का

प्रतीक है। जैन-दर्शन में एक प्रसंग आता है जिसके अनुसार एक हाथी अपने अपूर्व करुणा भाव के कारण अगले जन्म में राज-परिवार (श्रेणिक राजा का पुत्र) में जन्म लेता है। कथा का विवरण देखें: स्पष्ट है कि कर्म सिद्धांत केवल इंसानों पर ही लागू नहीं होता, सभी प्राणियों पर लागू होता है। सत्कर्म का सबसे बहुमूल्य लाभ आत्म- संतोष है जिसे प्राप्त करने में तनिक भी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। सन्मार्ग पर चलने वाले का अन्तरात्मा अपने आप को प्रोत्साहन भरा आशीर्वाद देता रहता है। इस आधार पर बढ़ता हुआ आत्मबल मनुष्य की वास्तविक शक्ति को इतना अधिक बढ़ा देता है जिसकी तुलना उपनिषद् के अनुसार हजार हाथियों के बल से भी नहीं की जा सकती। प्रश्न यह है कि कर्म का आरंभ कब से हुआ? इसका सीधा उत्तर है कि जब से शरीर तथा आत्मा का सम्बन्ध है। यहां यह जानना आवश्यक है की जिस प्रकार सृष्टि प्रवाह से अनादि है इसी प्रकार जीव तथा शरीर का सम्बन्ध अनादि है इसलिए कर्म प्रवाह भी अनादि है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'स्वतंत्र कर्त्ता' सूत्र द्वारा कहा कि कर्त्ता कर्म करने में स्वतन्त्र है। कर्त्ता यदि चाहे तो कल्याण का कार्य अर्थात् परोपकार करे, दीन-दुखियों की सेवा करे अथवा अन्याय, अत्याचार, चोरी, बलात्कार करे। परन्तु उसका फल उसके हाथ में नहीं है। वेद में एक मन्त्र में स्पष्ट कहा है:- **'न किल्विषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रै: सममान एति। अनूनं निहितं पात्रं न एतत् पक्तारं पक्व: पुनराविशति।। -अथर्व १२/३/४८'**[4] अर्थ- व्यक्ति अपने कर्मों में पवित्र होता है, उसके लिए कोई पाप या अधर्म नहीं होता। उसके पास ऐसा कोई आधार नहीं होता जो उसके मित्रों के साथ समान रूप से व्यवहार करने में बाधा बने। उसके पास एक ऐसा पात्र होता है जो कभी खाली नहीं होता, और जब वह भोजन पकाता है, तो वह पका हुआ भोजन फिर से उसके पास वापस आता है। सरल शब्दों में कर्मफल रूपी तराजू पूर्ण है बिना किसी घटा-बढ़ी के सुरक्षित रहती है। पकाने वाले को पकाया हुआ पदार्थ, कर्मफल के रूप में प्राप्त हो जाता है।"

स्वतन्त्र मनुष्य नहीं, ईश्वर ही है। ईश्वर इसलिए स्वतन्त्र है कि उसने नियम व्यवस्था बनाई है और उसने सर्वप्रथम अपने को बाँधा है। जहाँ विश्व का कण- कण किसी विधान से बँधा है उसी प्रकार ईश्वर भी मर्यादा पुरुषोत्तम है। मर्यादाएँ टूटने न पायें, उन्हें तोड़ने का कोई दुस्साहस न करे इसलिए उसने अपने को भी प्रतिबन्धित किया है। पात्र की क्षमता से अधिक अनुदान किसी को नहीं मिलता। कर्मफल की मर्यादा का उल्लंघन करके वह न तो किसी को क्षमा प्रदान करता है और न किसी के भक्त- अभक्त होने पर राग, द्वेष की नीति अपनाता है। न्याय और निष्पक्षता की रक्षा उसके लिए प्रधान है। ईश्वर को कर्मफल श्रृंखला में विद्युत के समतुल्य माना जाय तो उसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। जैसे बिजली का सही उपयोग करने पर वह उजाला और ऊर्जा प्रदान करती है, वैसे ही ईश्वर की शक्ति अच्छे कर्मों से सकारात्मक परिणाम देती है। जैसे गलत तार मिल जाने पर गलत विद्युत् प्रवाह से आग लग सकती है, वैसे ही गलत कर्मों से नकारात्मक परिणाम मिलते हैं।

वर्तमान के तकनीकी युग में प्रत्येक व्यक्ति भौतिक विलासिता को प्राप्त करने के लिये सत्कर्म और दुष्कर्म में फर्क किये बिना कर्म किये जा रहे है, फलस्वरूप समाज में चोरी डकैती बलात्कार जैसी घटनाये बहुतायत घटित हो रही है दुष्कर्मो के कारण व्यक्ति विभिन्न बीमारियों से ग्रसित है स्वयं या परिवार के सदस्य अकाल मृत्यु को प्राप्त कर रहे है भगवन की भक्ति भी अलग भाव से हो रही है अत वसुधैव कुटुम्बकम को चरितार्थ करने के लिये कर्म प्रधान राष्ट्र भारत में पुन निष्काम कर्म की आवश्यकता है लोग कर्मो के प्रारब्ध को समझकर सत्कर्म के लिये प्रेरित हो जिससे व्यक्ति अपनी नैतिक जिम्मेदारी को पूर्ण कर एक सशक्त समाज और राष्ट्र का निर्माण कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

(1) भगवतगीता, अध्याय 2 श्लोक ४७ पृष्ठ 23 – 24
(2) रामचरित मानस, बालकाण्ड, गोस्वामी तुलसी दास
(3) भगवतगीता, अध्याय 5 श्लोक १२ पृष्ठ 123 – 124
(4) अथर्ववेद, अध्याय १२ कंडिका 3 मंत्र संख्या ४८